[2021] 11 एस सी आर 377

वी. प्रभाकर

बनाम

बासवराज के. (मृत)विधिक प्रतिनिधियों द्वारा एवं अन्य ।

(सिविल अपील सं। 1376–1377 2010)

07 अक्टूबर, 2021

[संजय किशन कौल और एम. एम. सुंदरेश, न्यायमूर्तिगण]

वसीयत – भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम – धारा 63 – साक्ष्य अधिनियम – धारा 68 –सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 – धारा 96 – घोषणा और वादभूमि के कब्ज़े के लिए वाद – अपीलार्थी ने स्वामी द्वारा निष्पादित पंजीकृत वसीयत (Ext.P4) के आधार पर संपत्ति पर अधिकार का दावा किया, प्रतिवादीगण ने Ext.P4 के निष्पादन को स्वीकार किया, हालांकि बाद में अपंजीकृत वसीयत (Ext.D1) को देखते हुए वाद को खारिज करने की मांग की, जिसे कथित रूप से स्वामी द्वारा प्रतिवादी क्रं. 2 के पक्ष में निष्पादित किया गया था। (प्रतिवादी क्रं. 1 का नाबालिग बेटा – अपीलार्थी का पूर्ववर्ती बहनोई) — विचारण न्यायालय द्वारा फैसला सुनाया गया मुकदमा – प्रथम अपिलीय न्यायालय ने मुकदमा खारिज कर दिया – समीक्षा, खारिज – अपील पर, अभिनिर्धारित कियाः परिक्षण न्यायालय एक संदेह की न्यायालय नहीं बल्कि विवेक का न्यायालय है – जब वसीयत के साथ अपीलार्थी की बहन थी और वसीयत को उसके भाई द्वारा सत्यापित किया गया था और जब दोनों ने कोई मुद्दा नहीं उठाया तो वसीयत पर संदेह की कोई गुंजाइश नहीं थी – इसके अलावा, प्रतिवादीगण ने Ext.P4 के निष्पादन के तथ्य से इनकार नहीं किया – यह तथ्य कि उन्होंने Ext.D1 पर भरोसा किया, जिसने वैध रूप से किए गए Ext.P4 पर ध्यान दिया, उच्च न्यायालय की ओर से किसी भी संदेह की कोई आवश्यकता नहीं थी।

केवल भाई या बहन के बहिष्कार से कोई संदेह पैदा नहीं होगा जब तक कि यह एक निष्कर्ष बनाने वाली अन्य परिस्थितियों से घिरा न हो–अपीलार्थी ने साक्ष्य अधिनियम कि धारा 68 के साथ उत्तराधिकार अधिनियम कि धारा 63 के जनादेश का विधिवत पालन किया,–अपीलीय न्यायालय ने अनावश्यक रूप से संदेह पैदा किया, जब कोई नहीं था, उसने प्रासंगिक सामग्रियों पर विचार नहीं किया और जब आवश्यक नहीं था तो अपने स्वयं के विचारों को प्रतिस्थापित किया–अपीलीय न्यायालय का निर्णय जैसा कि समीक्षा में पुष्टि की गई थी, रद्द कर दिया गया–विचारण न्यायालय का फरमान बहाल किया गया।

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 — धारा 96 – अपीलीय न्यायालय, शक्ति के दायरे और दायरे के तहत–चर्चा की गई।

साक्ष्य अधिनियम, 1872:

धारा 3, 8 — अभिनिर्धारित कियाः जब कोई पक्ष पूर्ववर्ती वसीयत के प्रतिसंहरण के आधार पर दावा करता है, जैसा कि पश्चातवर्ती वसीयत में दर्शाया गया है, तब पूर्व वसीयत की स्वीकृति एक आचरण का हिस्सा होगी जो एक प्रासंगिक तथ्य के साथ–साथ एक मुद्दे में तथ्य की ओर ले जाती है।

धारा 17, 58 — आयोजित किया गयाः जब कोई पक्ष वसीयत के निष्पादन को स्वीकार करता है, जो अन्यथा धारा 63, भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम और धारा 68, साक्ष्य अधिनियम, के अनुसार साबित हो चुका है, तब वह एक प्रासंगिक तथ्य बन जाता है जो विधिवत साबित हुआ है – भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम – धारा 63 – साक्ष्य अधिनियम – धारा. 68.

धारा 68 – आयोजित किया गयाः वसीयत को सबित करना हेतु धारा 68 का अनिवार्य रूप से पालन किया जाना चाहिए – इस प्रावधान को भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 63 के साथ देखा और पढ़ा जाना चाहिए – भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम – धारा. 63.

पंजीकरण अधिनियम, 1908 – धारा 17 , 18 , 27 — आयोजित किया गयाः वसीयत का पंजीकरण इसे साबित करने के लिए केवल एक अतिरिक्त/उपस्थित परिस्थिति है।

उपलब्ध खंडन योग्य अनुमान के साथ यू / साक्ष्य का s.114 (e) साक्ष्य अधिनियम, 1872 – s.114 (e), 115।

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908– आदेश VI, VIII – आयोजित याचिकाएँः अनुतोष केवल अभिवचनों के आधार पर हो सकता है – इसी तरह साक्ष्य भी अभिवचनों पर आधारित होना चाहिए — एकमात्र अपवाद तब होगा जब पक्ष एक–दूसरे के मामले को बहुत अच्छी तरह से जानते हों और एक मुद्दे में एक अभिवचन निहित हो।

अपीलों को अनुमति देते हुए, न्यायालय ने

अभिनिर्धारित कियाः 1. भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 3 "तथ्य" को परिभाषित करती है। धारा 8 के अतंर्गत एक पक्ष के आचरण को तथ्य के रूप में माना जाएगा। ऐसा आचरण या तो पूर्व या पश्चात्वर्ती हो सकता है। यह एक हेतु या तैयारी का परिणाम है। जब किसी पक्ष के आचरण पर साक्ष्य दिया जाता है और यदि यह न्यायालय की संतुष्टि में साबित हो जाता है, विशेष रूप से जब इसमें अधिस्वीकृती शामिल होती है, तब पर्याप्त महत्व दिए जाने की आवश्यकता होती है। इस तरह के आचरण में एक पक्ष से निकलने वाले मौन शामिल होगा जिससे बोलने और व्यक्त करने की अपेक्षा की जाती है। जब कोई पक्ष पूर्व वसीयत को निरस्त करने के आधार पर दावा करता है, जैसा कि पश्चातवर्ती वसीयत में संकेत दिया गया है, तो पूर्व की उक्त स्वीकृति आचरण का हिस्सा होगी जो एक प्रासंगिक तथ्य की ओर ले जाती है। धारा 17 "स्वीकृत" को परिभाषित करती है जिसमें मौखिक और दस्तावेजी दोनों तरह का कथन शामिल होगा। जब इस तरह की स्वीकृति स्पष्ट और सुबोध है, तो न्यायिक नोटिस लेते समय इसे साबित करने की कोई आवश्यकता नहीं है। धारा 58 के तहत, स्वीकार किए गए तथ्य को

तब तक साबित करने की आवश्यकता नहीं है जब तक कि न्यायालय इसकी मांग नहीं करती है। इस प्रकार, एक ऐसे मामले में जहां एक पक्ष वसीयत की प्रकृति वाले दस्तावेज़ का निष्पादन को स्वीकार करता है जो अन्यथा क्रमशः भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम और भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 63 और धारा 68 के अनुसार साबित होता है यह न्यायालय द्वारा किसी भी विवेकाधिकार के अभाव में विधिवत साबित किया गया एक प्रासंगिक तथ्य बन जाता है। विवेकाधिकार का प्रयोग न्यायिक है और इसलिए, किसी पक्ष को इसे अन्यथा साबित करने के लिए कहने का एक आधार होना चाहिए। धारा 68 एसे दस्तावेज़ जिनका अनुप्रमाणित होना विधि द्वारा अपेक्षित है, के निष्पादन को साबित करने की आवश्यकता की बात करती है। यह प्रावधान अनिवार्य है क्योंकि प्रयुक्त शब्द "होगा" है, जिसका अर्थ है कि इसका उपयोग साक्ष्य के रूप में तब तक नहीं किया जाएगा जब तक कि कम से कम एक अनुप्रमाणक साक्षी को इसके निष्पादन को साबित करने के लिए नहीं बुलाया गया हो। जब वसीयत साबित करने की बात आती है, तो अधिनियम की धारा 68 का पालन करना अनिवार्य है। इस प्रावधान को भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 63 के साथ देखा और पढ़ा जाना चाहिए जो न केवल एक अनिवार्य प्रमाणन को अनिवार्य करता है बल्कि भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 68 के अनुपालन को दोहराता है। धारा 114 न्यायालय को कुछ तथ्यों के अस्तित्व का उपधारणा करने की सुविधा प्रदान करती है। जैसा कि प्रयुक्त शब्द "मई" है, यह एक खंडन योग्य धारणा है। धारा 114 (ड) के तहत न्यायिक और पदीय कृत्यों जो नियमित रूप से संपिादत किए गए है, की उपधारणा की जा सकती है। निरोध को नियंत्रित करने वाले सिद्धांत को अधिनियम की धारा 115 के तहत परिभाषित किया गया है। [पारस 14–18] [385–C–H; 386–A–C]

2. वसीयत का पंजीकरण केवल खंडन योग्य उपधारणा के साथ इसे साबित करने के लिए एक अतिरिक्त या संबंधित परिस्थिति है जो भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 114 (ड) के तहत उपलब्ध है। [पैरा 19] [386–ई]

3. "अभिवचन" शब्द को परिभाषित करते हुए संहिता का आदेश VI, वादपत्र और लिखित कथन दोनों के लिए सम शर्तों पर लागू होता है। अनुतोष केवल अभिवचनों के आधार पर ही मिल सकता है। साक्ष्य भी ऐसी अभिवचनों पर आधारित होना चाहिए। एकमात्र अपवाद तब होगा जब पक्ष एक–दूसरे के मामले को बहुत अच्छी तरह से जानते हैं और इस तरह के अभिवचन किसी मुद्दे में निहित है। इसके अतिरिक्त, एक न्यायालय किसी तथ्य पर न्यायिक अपेक्षा कर सकती है जब वह रिकॉर्ड के सामने एकदम स्पष्ट हो। [पैरा 20] [386–एफ; 387–ए–बी] 4. प्रथम अपीलीय न्यायालय धारा 96 के तहत शक्ति का प्रयोग करते हुए विचारण न्यायालय कि कार्यवाही पुनः कर सकती है। हालांकि, इस तरह की शक्ति का उपयोग सावधानी के साथ किए जाने की उम्मीद है।

क्योंकि केवल विचारण न्यायालय को ही गवाह के आचरण को देखने का आनंद मिलता है। ऐसी शक्ति का प्रयोग करते हुए, अपीलीय न्यायालय को विचारण न्यायालय के विचारों को ध्यान में रखना होगा। यदि उसे लगता है कि विचारण न्यायालय गलत है, तो उसका निर्णय दिए गए तर्क पर होना चाहिए। विचारण न्यायालय के निष्कर्षों पर चर्चा किए बिना, अपीलीय न्यायालय द्वारा केवल विचारों का प्रतिस्थापन स्वीकार्य नहीं है। यदि दो विचार संभव

हैं, तो केवल विचारण न्यायालय द्वारा व्यक्त किए गए विचार के साथ जाना उचित होगा। अपने निष्कर्षों के समर्थन में तर्क को अपनाते समय, अपीलीय न्यायालय से केवल नैतिक आधारों पर जाने की अपेक्षा नहीं की जाती है। हालाँकि पहला अपीलीय न्यायालय तथ्य और विधि का अंतिम न्यायालय है, लेकिन इसे संहिता की धारा 96 के क्षेत्र और दायरे के अनुरूप होना चाहिए। [पैरा 21 और 23] [388–डी–एफ; 393–एच]

बछाज नाहर बनाम। नीलिमा मंडल (2008) 17 धारा. सी. सी. 491: [2008] 14 एससीआर 621; जगदीश सिंह बनाम। माधुरी देवी (2008) 10 धारा. सी. सी. 497: [2008] 6 धारा. सी. आर. 1176–पर निर्भर था।

5. वसीयतनामा न्यायालय संदेह का नहीं, बल्कि विवेक का न्यायालय है। इसे बिना नैतिक तर्क को अपनाए, प्रासंगिक तत्थयों पर विचार करना होगा। भाई या बहन में से किसी एक का केवल बहिष्कार संदेह पैदा नहीं करेगा जब तक कि यह एक अनुमान बनाने वाली अन्य परिस्थितियों से घिरा न हो। एक ऐसे मामले में जब वसीयतकर्त्री, वसीयत के लाभार्थी की बहन के साथ होती है और उक्त दस्तावेज़ भाई द्वारा प्रमाणित किया जाता है, तो किसी भी संदेह के लिए कोई जगह नहीं बचती, जब दोनों ने कोई मुद्दा नहीं उठाया है। अपीलार्थी ने भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 68 के साथ भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 63 के अधिदेश का विधिवत पालन किया। वा.सा. 2 अपीलार्थी का भाई होने के नाते और दूसरी बहन प्रदर्श पी.4 के निष्पादन के समय मौजूद थी। उन्होंने कोई आपत्ति नहीं उठाई है। दोनों न्यायालयों ने पाया कि प्रदर्श डी.1 एक जाली और मनगढ़ंत दस्तावेज है। कथित बंधक प्रतिवादी क्रं.1 के पक्ष में सिद्ध नहीं हुआ है। जहाँ कोई संदेह नहीं था वहाँ अपीलीय न्यायालय द्वारा अनावश्यक रूप से संदेह पैदा किया गया। प्रतिवादीगण ने प्रदर्श पी.4 के निष्पादन के तथ्य से इनकार नहीं किया है। तथ्य यह है कि उन्होंने प्रदर्श डी.1 पर भरोसा किया, जिसमें प्रदर्श पी.4 के सही रूप से किए जाने में ध्यान में रखा, तो उच्च न्यायालय की ओर से किसी भी संदेह की कोई आवश्यकता नहीं थी। वह भी तब, जब विचारण न्यायालय को कोई संदेह नहीं मिला। इस तरह का संदेह अपीलार्थी के किसी भी भाई–बहन से उत्पन्न नहीं हुआ था, जो अन्यथा वाद संपत्ति में हिस्सेदारी का हकदार थे। उच्च न्यायालय ने विचारण न्यायालय द्वारा व्यक्त किए गए विचारों से भिन्न होने का कोई कारण नहीं बताया। अपीलीय न्यायालय ने प्रासंगिक तत्थयों पर विचार नहीं किया है और तथ्यों या विधि द्वारा अपेक्षित नहीं होने से धी अपने स्वयं के विचारों को प्रतिस्थापित किया है। 2007 के आर. पी. No.279 में पुष्टि किए गए अपीलीय न्यायालय के निर्णय और डिक्री को निरस्त कर दिया गया है। विचारण न्यायालय के निर्णय और डिक्री को पुनः स्थापित किया जाता है। [पैरा 24, 25, 27, 28 और 30] [394–ए–ई; 395–ए, सी–डी, जी]

जोसेफ एंटनी लाजरस (मृत) एल. आर. बनाम ए. जे. फ्रांसिस द्वारा (2006) 9 एससीसी 515: [2006] 3 धारा. सी. आर. 709; महेश कुमार (मृत) एल. आर. बनाम विनोद कुमार और अन्य द्वारा। (2012) 4 एससीसी

387 2012 (3) जे. टी. 338–संदर्भित।

मामला कानून संदर्भ

[2006] 3 एससीआर 709

संदर्भित किया गया है

पैरा

13

[2008] 14 एससीआर 621

उस पर भरोसा करें

पैरा

20

[2008] 6 एससीआर 1176

उस पर भरोसा करें

पैरा

21

सिविल अपीलीय न्यायनिर्णयः सिविल अपील Nos.1376

1377 2010 से।

उच्च न्यायालय के 20.09.2006 दिनांकित निर्णय और आदेश से

2004 के आर. एफ. ए. No.692 में बैंगलोर में कर्नाटक सरकार का आदेश और 2007 के आर. पी. No.279 में दिनांकित 23.11.2007 का आदेश।

आनंद संजय एम. नुली, सूरज कौशिक, आगम शर्मा, धर्म

सिंह, मेसर्स नुली और नुली, अधिवक्ता। अपीलार्थी के लिए।

सुश्री किरण सूरी, वरिष्ठ अधिवक्ता। , धारा. जे. अमित, कृष्ण कुमार, डॉ. (श्रीमती)

विपिन गुप्ता, अधिवक्ता। प्रतिवादीगण के लिए।

न्यायालय का निर्णय इनके द्वारा दिया गया था

एम. एम. सुंदरेश, न्यायमूर्ति

पृष्ठभूमि तथ्यः

1. वाद संपत्ति मूल रूप से एक सुश्री जेसी जयलक्ष्मी (मृत) की थी। । मृतक सुश्री जेसी जयलक्ष्मी, एक स्पिनस्टर, अपीलार्थी/वादी की मौसी थीं। श्री विजय कुमार और सुश्री कांता लक्ष्मी क्रमशः उनके भाई और बहन थे। अपीलार्थी का मामला यह है कि मृतक सुश्री जेसी जयलक्ष्मी उसे अपने बेटे के रूप में गोद लिया और जब उसे पक्षाघात का दौरा पड़ा तो उसने उसकी देखभाल की।

2. प्रदर्श पी.4 की एक पंजीकृत वसीयत सुश्री जेसी द्वारा 04.09.1985 को अपीलार्थी के पक्ष में निष्पादित की गई थी। उक्त वसीयत को अपीलार्थी के भाई श्री विजय कुमार द्वारा अनुप्रमाणित किया गया था, जिनका वा.सा.2 के रूप में परीक्षण किया गया है।

सुश्री जेसी जयलक्ष्मी को उप–पंजीयक के कार्यालय में सुश्री कांता लक्ष्मी द्वारा ही लाया गया।

3. सुश्री कांता लक्ष्मी और उनके पति, जिन्हें प्रतिवादी क्रं 1 के रूप में रखा गया है, के संबंध तनावपूर्ण हो गए। परिणामस्वरूप उन्होंने 1987 के एमसी क्रं 879 में बैंगलोर के परिवार न्यायालय के प्रधान न्यायाधीश के समक्ष तलाक के लिए याचिका दायर की और 26.03.1988 पर तलाक की डिक्री प्राप्त की। अपीलार्थी का आगे मामला यह है कि प्रतिवादी क्रं 1 को वाद संपत्ति में रहने की अनुमति दी गई थी। प्रतिवादी क्रं. 2, प्रतिवादी क्रं. 1 का पुत्र है। चूंकि प्रतिवादी क्रं. 1 ने वाद संपत्ति को खाली करने से इनकार कर दिया, जो एक आवासीय घर है, जिसके लिए कहा गया है कि अपीलार्थी ने सभी वैधानिक बकाया का भुगतान किया है, इसलिए 1992 के ओ.एस. क्रं. 51 में घोषणा और कब्जे के लिए वाद दायर किया गया था जो 11.12.2003 पर घोषित किया गया था।

4. प्रदर्श पी.4 के निष्पादन के तथ्य को स्वीकार करते हुए प्रतिवादी/उत्तरदाता द्वारा सुश्री जेसी जयलक्ष्मी द्वारा प्रतिवादी क्रं. 2 (प्रतिवादी क्रं. 1 के नाबालिग बेटे) के पक्ष में कथित रूप से निष्पादित एक अपंजीकृत वसीयत, प्रदर्श डी.1 पेश किया गया। यह उनका मामला है कि प्रदर्श पी.4 को प्रदर्श डी.1 द्वारा प्रतिस्थापित किया गया है। प्रदर्श डी.1 मृतक सुश्री जेसी जयलक्ष्मी के पक्ष में 31,000 / – रुपये के भुगतान पर प्रतिवादी क्रं. 1 के पक्ष में बंधक की भी बात करता है। इस प्रकार, प्रतिवादी ने प्रदर्श पी.4 के निष्पादन पर गंभीरता से विवाद नहीं किया, बल्कि प्रदर्श डी.1 के तहत और कथित बंधक के आधार पर आरोप लगाते हुए वाद को खारिज करने के लिए एक याचिका दायर की। अनुमेय व्यवसाय के संबंध में अपीलार्थी के कथन का भी खंडन किया गया था। तलाक के लिए डिक्री को स्वीकार करते समय प्रथम प्रतिवादी द्वारा यह तर्क दिया जाता है कि इसे प्रभावी नहीं किया गया है।

5. विचारण न्यायालय ने निम्नलिखित विचारण के बिन्दु तैयार किएः

> " 1. क्या वादी द्वारा यह साबित किया गया है कि वादी ने 04.09.1985 को निष्पादित वसीयत के आधार पर वाद की संपत्ति का अधिकार हासिल कर लिया है?

2. क्या वह यह साबित करता है कि जेसी जयलक्ष्मी द्वारा निष्पादित वसीयत दिनांकित 16.08.1996 मनगढ़ंत और जाली दस्तावेज है?

3. क्या वह यह साबित करता है कि प्रतिवादी अनुसूचिका संपत्ति पर निःशुल्क अज्ञाप्तिधारी के रूप में कब्जे में है?

4. क्या वादी के पास काई वादकारण है?

5. क्या वाद परिसीमा द्वारा वर्जित है?

6. पक्ष किस आदेश या डिक्री के हकदार हैं? "

6. अपीलार्थी ने खुद को वा.सा.1 के रूप में और अपने भाई को वा.सा.2 के रूप में परीक्षण किया है। दूसरे अनुप्रमाणक साक्षी, जो की स्वतंत्र हैं, का वा.सा.3 के रूप में परीक्षण किया गया। प्रतिवादीगण की ओर से, प्रतिवादी क्रं.1 ने खुद को प्र.सा.1 और अनुप्रमाणक साक्षी, मनीष की प्र.सा.2 के रूप में जांच की।

7. विचारण न्यायालय ने इस बात से संतुष्ट हो जाने पर कि प्रदर्श पी.4 को साबित करने में भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 68 के साथ पठित भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 63 के तहत आवश्यक मापदंडों का विधिवत पालन किया गया है, वाद का निर्णय सुनाया। प्रदर्श डी.1 की वास्तविकता पर संदेह करने के लिए विस्तृत कारण प्रस्तुत किया गया। कारण में अंगूठे की छाप, हस्ताक्षर, गायन की प्रकृति, जिस तरीके से इसे लिखा गया था, और प्र.सा..2 द्वारा दिए गए साक्ष्य शामिल थे, जो प्र.सा.1 के परिचित होने के अतिरिक्त मृतक सुश्री जेसी जयलक्ष्मी के बारे में कुछ नहीं जानती थीं। यह पाया गया कि प्रदर्श डी.1 में अंगूठे का निशान धुँधला था और प्रदर्श डी.1 के लेखक का परीक्षम नहीं कराया गया था। इसके अलावा, प्रदर्श डी.1 पर 15.08.1986 की तारीख वाला डाक टिकट और खजाने की मुहर, स्वतंत्रता दिवस पर जारी की गई थी। हम यह भी नोट करते हैं कि प्रदर्श डी1 को 16.08.1986 पर निष्पादित किया गया था, जबकि सुश्री जेसी जयलक्ष्मी की मृत्यु 22.08.1986 यानी एक सप्ताह के भीतर हो गई थी।

8. उसी पर व्यथित होकर, प्रतिवादीगण ने सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 96 को लागू करते हुए उच्च न्यायालय के समक्ष 2004 के आर. एफ. ए. सं. 692 में एक अपील दायर की, जिसका 20.09.2006 पर निर्णय किया गया था।

9. उच्च न्यायालय ने विचारण न्यायालय के प्रदर्श डी.1 की वास्तविकता के के संबंध में दिए गए निष्कर्षों की पुष्टि की। तथापि, किसी विशिष्ट अभिवचन के अभाव में प्रदर्श पी.4 के निष्पादन की स्वीकृति के साथ, उच्च न्यायालय ने एक संदेह का मनोरंजन करके एक अभ्यास किया और तदनुसार पाया कि इसे अपीलार्थी द्वारा दूर नहीं किया गया है। निष्कर्षों को इस प्रभाव के लिए प्रस्तुत किया गया है कि अपीलार्थी और वा.सा.2 की बहन के अपवर्जन में कोई तर्क नहीं है। संयोग से, यह माना गया है कि वा.सा3 का साक्ष्य प्रदर्श पी.4 के आसपास के संदेह को दूर करने के लिए पर्याप्त नहीं होगा और यदि मृतक सुश्री जेसी जयलक्ष्मी को उप–पंजीयक

के कार्यालय में सुश्री कांता लक्ष्मी द्वारा लाया गया था, तो उन्हें वसीयत से बाहर रखने का कोई आधार नहीं था। उस आधार पर, अपील को स्वीकार करते हुए वाद खारिज कर दिया गया था।

10. अपीलार्थी द्वारा विलंब को क्षमा करने के साथ साथ एक आवेदन समीक्षा के लिए दायर किया गया था। यह आवेदन 2007 के आर. पी. 279 में दायर किया गया था जिसे उच्च न्यायालय ने 23.11.2007 पर देरी को माफ नहीं करते हुए खारिज कर दिया था। अपीलार्थी ने उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए उपरोक्त निर्णय और डिक्री के खिलाफ वर्तमान अपील दायर की है।

11. इस न्यायालय के समक्ष अभिवचनों के लंबित रहने के दौरान, प्रतिवादी क्रं. 1 की मृत्यु हो गई। उनकी तलाकशुदा पत्नी सुश्री कांता लक्ष्मी की भी मृत्यु हो गयी। नतीजतन, प्रतिवादी क्रं. 2 के साथ, विवाह से पैदा हुई एक बेटी (प्रतिवादी क्रं. 1 (बी)) को मृतक प्रतिवादी क्रं. 1 के अतिरिक्त कानूनी उत्तराधिकारी के रूप में रिकॉर्ड पर लाया गया था।

अपीलार्थी के तर्कः

12. अपीलार्थी के अधिवक्ता द्वारा यह तर्क किया गया कि प्रदर्श पी.4 एक पंजीकृत दस्तावेज है। वा. सा. 2 और 3 ने उक्त दस्तावेज़ के अनुरूप ही कथन किया है । यह तथ्य कि सुश्री कांता लक्ष्मी मृतक थीं, सुश्री जेसी जयलक्ष्मी के साथ थीं से पता चलता है कि प्रदर्श पी.4 को सही तरीके से निष्पादित कर दिया गया था। उन्होंने प्रदर्श पी4 पर कोई आपत्ति नहीं जताई। विवाद करने वाली कोई दलील नहीं थी। उच्च न्यायालय ने अपना संदेह पैदा कर लिया है। जिन निष्कर्षों पर विचारण न्यायालय ने वाद को डिक्री किया था उनमें में कोई दोष नहीं पाया गया है। यह पता चलने के बाद कि प्रदर्श डी.1 एक जाली और मनगढ़ंत दस्तावेज है, उच्च न्यायालय को विचारण न्यायालय के आदेश और फैसले की पुष्टि करनी चाहिए थी।

प्रतिवादीगण के तर्कः

13. यह सवाल कि क्या कोई संदिग्ध परिस्थिति मौजूद है, एक तथ्य है। इसलिए, भारत के संविधान का अनुच्छेद 136 का आह्वान करके इसका निर्णय नहीं लिया जा सकता है। अपीलार्थी के भाई और बहन के अपवर्जन के लिए कोई स्पष्टीकरण नहीं है। प्रदर्श डी.1 को निम्न न्यायालयों द्वारा गलत तरीके से खारिज कर दिया गया है। प्रदर्श पी.4 की वैधता महत्वपूर्ण है। प्रथम अपीलीय न्यायालय को प्रदर्श पी4 के आसपास के संदेह पर खुद को संतुष्ट करने हेतु पर्याप्त क्षेत्राधिकार प्राप्त है। सुश्री किरण सूरी, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने अपने प्रतिष्टियों को मजबूत करने के लिए निम्नलिखित निर्णयों पर भरोसा कियाः

ए. जोसेफ एंटनी लाजरस (मृत) एल. आर. बनाम ए. जे. फ्रांसिस, (2006) 9 एस. सी. सी. 515

बी. महेश कुमार (मृत) एल. आर. बनाम विनोद कुमार और अन्य (2012) 4 एस. सी. सी. 387

कानून की मीमांसा

भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872:

14. भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 3 "तथ्य" को परिभाषित करती है। किसी पक्ष के आचरण को धारा 8 के तहत एक तथ्य के रूप में माना जाएगा। इस तरह का आचरण यह या तो पूर्व या पश्चात का हो सकता है। यह एक हेतु या एक तैयारी का परिणाम है।

जब किसी पक्ष के आचरण पर साक्ष्य दिया जाता है और यदि यह न्यायालय की संतुष्टि के लिए साबित होता है, विशेष रूप से जब इसमें स्वीकारोक्ति शामिल होती है, तो पर्याप्त महत्व दिया जाना आवश्यक है। इस तरह के आचरण में एक पक्ष का मौन शामिल होगी जिससे बोलने और व्यक्त करने की अपेक्षा की जाती है। जब कोई पक्ष पूर्व की वसीयत को निरस्त करने के आधार पर दावा करता है, जैसा कि बाद की वसीयत में दर्शाया गया है, तो उक्त स्वीकृति पूर्व का एक आचरण का हिस्सा होगा जो एक प्रासंगिक तथ्य के साथ–साथ मुद्दे में एक तथ्य की ओर ले जाएगा।

15. धारा 17 "स्वीकृत" को परिभाषित करती है जिसमें मौखिक और दस्तावेजी दोनों तरह का कथन शामिल होगा। जब इस तरह की स्वीकृति स्पष्ट और सुबोध है, तो न्यायिक नोटिस लेते समय इसे साबित करने की कोई आवश्यकता नहीं है। धारा 58 के तहत, स्वीकार किए गए तथ्य को तब तक साबित करने की आवश्यकता नहीं है जब तक कि न्यायालय इसकी मांग नहीं करती है। इस प्रकार, एक ऐसे मामले में जहां एक पक्ष वसीयत की प्रकृति वाले दस्तावेज़ का निष्पादन को स्वीकार करता है जो अन्यथा क्रमशः भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम और भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 63 और धारा 68 के अनुसार साबित होता है। यह न्यायालय द्वारा किसी भी विवेकाधिकार के अभाव में विधिवत साबित किया गया एक प्रासंगिक तथ्य बन जाता है। विवेकाधिकार का प्रयोग न्यायिक है और इसलिए, किसी पक्ष को इसे अन्यथा साबित करने के लिए कहने का एक आधार होना चाहिए।

16. धारा 68 एसे दस्तावेज़ जिनका अनुप्रमाणित होना विधि द्वारा अपेक्षित है, के निष्पादन को साबित करने की आवश्यकता की बात करती है। यह प्रावधान अनिवार्य है क्योंकि प्रयुक्त शब्द "होगा" है, जिसका अर्थ है कि इसका उपयोग साक्ष्य के रूप में तब तक नहीं किया जाएगा जब तक कि कम से कम एक अनुप्रमाणक साक्षी को इसके निष्पादन को साबित करने के लिए नहीं बुलाया गया हो। जब वसीयत साबित करने की बात आती है, तो अधिनियम की धारा 68 का पालन करना अनिवार्य है। इस प्रावधान को भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 63 के साथ देखा और पढ़ा जाना चाहिए जो न केवल एक अनिवार्य प्रमाणन को अनिवार्य करता है बल्कि भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 68 के अनुपालन को दोहराता है।

17. धारा 114 न्यायालय को कुछ तथ्यों के अस्तित्व का उपधारणा करने की सुविधा प्रदान करती है। जैसा कि प्रयुक्त शब्द "मई" है, यह एक खंडन योग्य धारणा है। धारा 114 (ड) के तहत न्यायिक और पदीय कृत्यों जो नियमित रूप से संपिादत किए गए है, की उपधारणा की जा सकती है।

निरोध को नियंत्रित करने वाले सिद्धांत को अधिनियम की धारा 115 के तहत परिभाषित किया गया है अधिनियम का पालन अनिवार्य रूप से किया जाना है। इस प्रावधान को भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 63 के

साथ देखा और पढ़ा जाना चाहिए जो न केवल एक अनिवार्य प्रमाणन को अनिवार्य करता है बल्कि भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 68 के अनुपालन को दोहराता है।

18. अवरोध को नियंत्रित करने वाले सिद्धांत को धारा 115 के तहत परिभाषित किया गया है।

अधिनियम से। जब कोई व्यक्ति अपनी घोषणा, कार्य या चूक द्वारा जानबूझकर किसी अन्य व्यक्ति को किसी चीज़ को सच मानने और उस विश्वास पर कार्य करने की अनुमति देता है, तो उसे उस चीज़ की सच्चाई से इनकार करने की अनुमति नहीं दी जाएगी।

रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1908:

19. रजिस्ट्रीकरण अधिनियम की धारा 17 उन दस्तावेजों से संबंधित है जिनका रजिस्ट्रीकरण अनिवार्य है। वसीयत को एक निर्वसीयती लिखत होने के कारण धारा 17 के तहत ऐसा कोई स्थान नहीं मिलता है जिसे धारा 18 के तहत दोहराया जाता है, जिससे इस तरह के दस्तावेज़ को एक पक्ष के विकल्प पर पंजीकृत किया जाता है। एक वसीयत जो मूल रूप से पंजीकृत नहीं है, उसे पंजीकरण के लिए प्रस्तुत किया जा सकता है या इसके तहत किसी भी समय जमा किया जा सकता है।

धारा 27. इसलिए, वसीयत का पंजीकरण केवल खंडन योग्य अनुमान के साथ इसे साबित करने के लिए एक अतिरिक्त या उपस्थित परिस्थिति है जो भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 114 (ड़) के तहत उपलब्ध है।

<u>व्यवहार प्रक्रिया सहिंता</u>

आदेश VI:

20. "अभिवचन" शब्द को परिभाषित करते हुए संहिता का आदेश VI भौतिक तथ्य जिन पर एक पक्ष अपने दावे या बचाव के लिए निर्भर करता है। इस तरह के अभिवचन में एक उचित मुद्दा उठाने के लिए आवश्यक आधार होना चाहिए। आदेश VIII नियम 2 के तहत एक प्रतिवादी करेगा नियम 3 के तहत एक इनकार विशिष्ट अभिवचन होना चाहिए। नियम 4 एक टालने वाले इनकार को प्रतिबंधित करता है और नियम 5 एक शिकायत में विशेष रूप से एक कथन को अस्वीकार नहीं करने के परिणामों की बात करता है जिससे एक स्वीकारोक्ति की धारणा हो जाती है।

अनुतोष केवल अभिवचनों के आधार पर ही मिल सकता है। साक्ष्य भी ऐसी अभिवचनों पर आधारित होना चाहिए। एकमात्र अपवाद तब होगा जब पक्ष एक–दूसरे के मामले को बहुत अच्छी तरह से जानते हैं और इस तरह के अभिवचन किसी मुद्दे में निहित है। इसके अतिरिक्त, एक न्यायालय किसी तथ्य पर न्यायिक अपेक्षा कर सकती है जब वह रिकॉर्ड के सामने एकदम स्पष्ट हो।अनुतोष केवल दलीलों के आधार पर ही मिल सकती है। ***बछज नाहर बनाम नीलिमा मंडल 17 एससीसी 491*** का निम्नलिखित परिच्छेद एक उपयोगी संदर्भ हो सकता है:

'15. उन परिस्थितियों जिनमें अभिवतनों में कमी या अनुपस्थिति को नजरअंदाज किया जा सकता है से संबंधित प्रासंगिक सिद्धांत इस न्यायालय की संविधान पीठ ने *भगवती प्रसाद बनाम चंद्रमौल* [ए.आई.आर 1966 एस.सी. 735]: (ए.आई.आर पी. 738, पैरा 10) में कहा था

" 10. ..... यदि कोई दलील विशेष रूप से नहीं की गई है और फिर भी वह निहितार्थ द्वारा एक मुद्दे में छुपी है, और जब पक्षों को पता था कि उक्त दलील वाद में शामिल थी, फिर केवल यह तथ्य कि दलील को अभिवचनों में स्पष्ट रूप से नहीं लिया गया था आवश्यक रूप से किसी पक्ष को उस पर भरोसा करने से वंचित नहीं करता है यदि वह साक्ष्य द्वारा संतोषजनक रूप से सिद्ध कर दिया गया है। सामान्य नियम में कोई संदेह नहीं है कि अनुतोष पक्षकारों के अभिवतनों में की गई दलीलों पर आधारित होनी चाहिए। लेकिन जहां उभयपक्ष के स्वत्व से संबंधित सारभूत मामला को विवाघक में अप्रत्यक्ष या सअस्पष्ट रूप से छुआ जाता है और उन्के बारे में साक्ष्य में बताया गया है, फिर यह तर्क कि एक विशेष मामला अभिवचनों में नहीं था, मात्र औपचारिक और तकनीकी होगा और हर मामले में सफल नहीं हो सकता। न्यायालय को इस तरह की आपत्ति से निपटने में यह विचार करना होगाः क्या पक्षों को पता है कि विचाराधीन मामला वाद में शामिल था और क्या उन्होंने इसके बारे में साक्ष्य का नेतृत्व किया? अगर यह दिखाई देता है कि पक्षों को पता नहीं था कि विचाणीय मामले में यह विवाघक था और उनमें से एक को इसके संबंध में साक्ष्य देने का कोई अवसर नहीं मिला तो, वह निस्संदेह एक अलग मामला होगा।

एक पक्ष को किसी ऐसे मामले पर भरोसा करने की अनुमति देना जिसके संबंध में दूसरे पक्ष ने साक्ष्य का नेतृत्व नहीं किया और उसके पास साक्ष्य का नेतृत्व करने का अवसर नहीं था, पूर्वाग्रह के विचार परिचय देगा और एक पक्षकार के लिए न्याय करने में, न्यायालय दूसरे पक्ष के वाथ अन्याय नहीं कर सकता। (जोर दिया गया)

XXX XXX XXX

'23 [एड। : पैरा 23 को आधिकारिक शुद्धिपत्र सं.एफ. 3/Ed.B.J./89/2009 दिनांक 17–7–2009]। [2021] 11 धारा. सी. आर.

यह मौलिक है कि दीवानी वाद में, दी जाने वाली राहत केवल अभिवचनों में की गई प्रार्थनाओं के संदर्भ में हो सकती है। इसके अलावा, दीवानी मुकदमों में, राहत का अनुदान विभिन्न कारकों जैसे न्यायालय शुल्क, सीमा, मुकदमों के पक्षकारों के साथ–साथ राहत को रोकने वाले आधारों, जैसे कि न्यायिक निर्णय, रोक, सहमति, कार्रवाई या पक्षकारों के कारणों में शामिल न होना आदि द्वारा सीमित है, जिनके लिए अभिवचन और सबूत की आवश्यकता होती है। इसलिए, यह अभिनिर्धारित करना संकटजनक होगा कि दीवानी मुकदमे में जो भी राहत मांगी जाए, न्यायालय तथ्यों की जांच करने पर कोई भी राहत दे सकती है जो वह उचित समझती है। एक लाख रुपये की वसूली के मुकदमे में, न्यायालय दस लाख रुपये के लिए आदेश नहीं दे सकती है। संपत्ति 'ए' की वसूली की स्थिति के मुकदमे में, न्यायालय संपत्ति 'बी' का कब्जा नहीं दे सकती है। स्थायी निषेधाज्ञा के लिए प्रार्थना करने वाले मुकदमे में, न्यायालय घोषणा या कब्जे की राहत नहीं दे सकती है। दीवानी वाद में राहत देने का क्षेत्राधिकार अनिवार्य रूप से अभिवचनों, भुगतान किए गए न्याय शुल्क, साक्ष्य आदि पर निर्भर करता है।

धारा 96:

21. प्रथम अपीलीय न्यायालय धारा 96 के तहत शक्ति का प्रयोग करते हुए विचारण न्यायालय द्वारा की गई कार्यवाही को पुनः कर सकती है। हालांकि, इस तरह की शक्ति का उपयोग सावधानी के साथ किए जाने की उम्मीद है। इसका कारण यह है कि केवल विचारण न्यायालय को ही गवाह के व्यवहार को देखने का आनंद मिलता है। इसलिए, गवाहों के बयान का आकलन करने में इसका अपना लाभ है जो अपीलीय न्यायालय को उपलब्ध नहीं हो सकता है। इस तरह की शक्ति का प्रयोग करते हुए, अपीलीय न्यायालय को विचार्णीय न्यायालय के विचारों को ध्यान में रखना होता है। यदि उसे लगता है कि विचारण न्यायालय गलत है, तो उसका निर्णय दिए गए तर्क पर होना चाहिए। विचारण न्यायालय के निष्कर्षों पर चर्चा किए बिना, अपीलीय न्यायालय द्वारा केवल विचारों का प्रतिस्थापन स्वीकार्य नहीं है। यदि दो विचार संभव हैं, तो केवल विचारण न्यायालय द्वारा व्यक्त किए गए विचार के साथ जाना उचित होगा। अपने निष्कर्षों के समर्थन में तर्क को अपनाते समय, अपीलीय न्यायालय से अकेले नैतिक आधार पर जाने की अपेक्षा नहीं की जाती है।

22. हमारे द्वारा व्यक्त किए गए उपरोक्त विचार कुछ और नहीं बल्कि **जगदीश सिंह बनाम माधुरी देवी (2008) 10 धारा. सी. सी. 497:** के मामले में इस न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय के निम्नलिखित पैराग्राफ के माध्यम से देखे जा सकने वाले कानून के तय किए गए सिद्धांत की पुनरावृत्ति है

" 27. इसमें कोई संदेह नहीं है कि उच्च न्यायालय प्रथम अपीलीय न्यायालय के रूप में शक्ति का प्रयोग कर रहा था और इसलिए यह न्यायालय के लिए न केवल विधि के प्रश्नों बल्कि तथ्य के प्रश्नों में भी प्रवेश करने के लिए खुला था। यह एक सुस्थपित स्धिांत हौ कि अपील वाद की निरंतरता है। इस प्रकार एक अपील मुख्य मामले की पुनः सुनवाई है और अपीलीय न्यायालय संपूर्ण मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य का पुनः मूल्यांकन, पुनर्मूल्यांकन और पुनरीक्षण कर सकता है और अपने निष्कर्ष पर आ सकता है।

28. हालांकि, इसके साथ ही, अपीलीय न्यायालय से अपेक्षा की जाती है कि वह मौखिक साक्ष्य पर विचारण न्यायालय द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्ष को ध्यान में रखे। यह नहीं भूलना चाहिए कि विचारण न्यायालय के पास

गवाहों के व्यवहार को देखने का एक फायदा और अवसर था और, इसलिए, विचारण न्यायालय के निष्कर्ष के साथल सामान्य रूप से छेड़छाड़ नहीं करनी चाहिए। इसमें कोई संदेह नहीं है कि अपीलीय न्यायालय के पास मूल न्यायालय की समान शक्तियां हैं, लेकिन उनका उपयोग उचित देखभाल, सावधानी और एहतियात के साथ किया जाना चाहिए। जब विचारण न्यायालय द्वारा मुख्य रूप से मौखिक साक्ष्य के मूल्यांकन पर किसी तत्थ का निष्कर्श अभिलिखित किया गया है, इसे तब तक हल्के में नहीं लिया जाना चाहिए जब तक कि साक्ष्य के मूल्यांकन में विचारण न्यायालय का दृष्टिकोण गलत न हो, कानून के सुस्थापित सिद्धांत विपरीत या अनुचित न हो।

29. एक सदी से भी पहले, *कोघ्लान बनाम कंबरलैंड* [(1898) 1 सीएच 704 (सीए)] में लिंडले, एम. आर. ने इस सिद्धांत का उच्चारण इस प्रकार किया;

" यहां तक कि जहां अपील तथ्य के प्रश्न पर होती है, अपील न्यायालय को यह ध्यान रखना होगा कि उसका कर्तव्य मामले की पुनः सुनवाई करना है, और न्यायालय को ऐसी अन्य तत्थयों के साथ न्यायाधीश के समक्ष तत्थ पर पुनर्विचार करना चाहिए जिन्हें उसने स्वीकार करने का निर्णय लिया हो। न्यायालय को तब अपना मन बनाना चाहिए और अपील किए गए निर्णय की अवहेलना नहीं करनी चाहिए, बल्कि सावधानीपूर्वक विचार करना चाहिए और उस पर विचार करना चाहिए; और यदि पूर्ण विचार पर न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि निर्णय गलत है तो इसे रद्द करने से पीछे नहीं हटना चाहिए। जब, जैसा कि अक्सर होता है, न्यायाधीश के समक्ष जिन गवाहों का परिक्षण प्रतिपरिक्षण किसा गया है, उनकी सापेक्ष विश्वसनीयता पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है, तो न्यायालय को उन्हें देखने और सुनने में हुए बड़े लाभ के बारे में पता चलता है। लिखित बयानों से गवाहों की सापेक्ष विश्वसनीयता का सही अनुमान लगाना अक्सर बहुत मुश्किल होता है और जब सवाल उठता है कि किस गवाह पर विश्वास किया जाना चाहिए न कि दूसरे पर; और वह सवाल तरीके और आचरण के आधार पर बदल जाता है तब अपील न्यायालय हमेशा गवाहों को देखने वाले न्यायाधीश द्वारा किए गए प्रभाव से निर्देशित होता है और होना चाहिए। लेकिन स्पष्ट रूप से परिस्थितियाँ, तरीके और व्यवहार से बिल्कुल अलग एक हौ सकती है, जो यह दिखा सकती हैं कि कोई बयान विश्वसनीय है या नहीं; और ये परिस्थितियाँ न्यायालय को [2021] 11 धारा. सी. आर. से अलग होने का आश्वासन दे सकती हैं

न्यायाधीश, यहां तक कि तथ्य की विश्वसनीयता को चालू करने के सवाल पर भी

गवाह जिन्हें न्यायालय ने नहीं देखा है।

वाट वी में लॉर्ड थैंकर्टन की टिप्पणियाँ भी हैं। थॉमस,

947 एसी 484])

) . सारा वीरास्वामी बनाम। तल्लूरी नारायण [ए. आई. आर. 1949 पी. सी. 32] ई प्रिवी काउंसिल की न्यायिक समिति ने इस मुद्दे पर प्रभावी फैसलों का उल्लेख करने के बाद कहा (वाट बनाम होमस, [(1947) 1 ऑल ई. आर. 582, पी. 583 एच–584 ए]):

" ..... लेकिन अगर समग्र रूप से साक्ष्य को मुकदमे में आए निष्कर्ष को उचित ठहराते हुए, और विशेष रूप से यदि उस निष्कर्ष पर एक न्यायाधिकरण द्वारा परस्पर विरोधी गवाही पर पहुंचा गया है, जिसने गवाहों को देखा और सुना है, तो अपीलीय न्यायालय इस बात को ध्यान में रखेगी कि उसने इस अवसर का लाभ नहीं उठाया है और यह कि सुनवाई न्यायाधीश का दृष्टिकोण कि विश्वसनीयता कहाँ निहित है यह बड़े वजन का हकदार है। इसका मतलब यह नहीं है कि प्रथम दृष्टांत के न्यायाधीश को यह निर्धारित करने में अचूक माना जा सकता है कि कौन सा पक्ष सच कह रहा है या अतिशयोक्ति से बच रहा है। अन्य न्यायाधिकरणों की तरह, वह तथ्य के प्रश्न पर गलत हो सकता है, लेकिन यह एक ठोस परिस्थिति है कि पहली बार में एक न्यायाधीश, जब मौखिक गवाही के मूल्य का अनुमान लगाने से, उसके सामने गवाहों को रखने और उनके साक्ष्य के तरीके का पालन करने का लाभ (जिसे अपील की अदालतों द्वारा अस्वीकार कर दिया जाता है) होता है।

दिया जाता है। "

. यह न्यायालय भी, आधी सदी से भी पहले सरजू एर्शाद वी. ज्वालेश्वरी, प्रताप नारायण सिंह [ए. आई. आर. 1951 धारा. सी.

20] में कहा गयाः (एयर पी। 121, पैरा 7)

" 7. हमारे विचार के लिए प्रश्न निस्संदेह एक तथ्य का प्रश्न है, जिसका निर्णय मामले में प्रस्तुत मौखिक साक्ष्य की सराहना पर निर्भर करता है। ऐसे मामलों में, अपीलीय न्यायालय को यह ध्यान में रखना होगा कि उसे वह लाभ नहीं है जो विचारण न्यायालय को गवाहों को अपने सामने रखने और न्यायालय में उनके बयान देने के तरीके का निरक्षण करने में था। इसका निश्चित रूप से यह अर्थ नहीं है कि जब कोई अपील तथ्यों पर होती है, तो अपीलीय न्यायालय विचारण न्यायाधीश द्वारा दिए गए तथ्य के निष्कर्ष को उलटने में सक्षम नहीं होता है। नियम यह है और यह व्यवहार के नियम से अधिक कुछ नहीं है कि जब किसी भी मुद्दे पर पक्षों के मौखिक साक्ष्य का टकराव होता है और निर्णय गवाहों की विश्वसनीयता पर निर्भर करता है, तो जब तक कि वहाँ एक गवाह का किसी विशेष साक्ष्य के बारे में कुछ विशेष विशेषता है जो विचारण न्यायाधीश के नजर से बच गया है, न हो अपनी राय को विस्थापित करने के लिए असंभवता का पर्याप्त संतुलन जहाँ विश्वसनीयता निहित है, वहाँ अपीलीय न्यायालय को विचारण न्यायाधीश के निष्कर्ष में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए

2. इस मुद्दे पर कई मामलों का उल्लेख करते हुए, न्यायालय ने निष्कर्ष निकालाः

(आरजू पर्सद मामला, ए. आई. आर. पी. 123 , पैरा 15):

" 15. ..... ऐसे मामलों में अपीलीय न्यायालय का कर्तव्य है कि वह देखें कि क्या समग्र रूप से लिए गए साक्ष्य को उचित ठहराया जा सकता है जिसपर विचारण न्यायालय द्वारा निष्कर्ष पर पहुँचा गया है या क्या वहाँ सबित हौ चुकी परिस्थितियों से उत्पन्न होने वाली असंभवता का कोई तत्व है जो न्यायालय की राय में इस तरह की खोज से कहीं अधिक है।

(जोर दिया गया)

5. लगभग एक दशक के बाद, *राधा प्रसाद बनाम. गजधर सिंह* आई. आर. 1960 धारा. सी. 115] इस न्यायालय ने दोहरायाः (एयर पी। 123, पैरा 15)

" 14. हमारी राय में कानून की स्थिति यह है कि जब तथ्यों पर कोई अपील की जाती है तो यह अपील न्यायालय का अधिकार और कर्तव्य है कि तथ्यों के सवाल पर उसका निर्णय क्या होना चाहिए, इस पर विचार करें। लेकिन अपने स्वयं के निर्णय पर आने में इसे ध्यान में रखना चाहिए कि यह मुद्रित अभिलेख को देखते हुए और गवाहों को देखना का अवसर नहीं था और यह कि इसे विचारण न्यायाधीश के निष्कर्ष कि विशेष गवाहक साक्ष्य विश्वास किया जाना चाहिए या नहीं किया जाना चाहिए को हल्के में अस्वीकार नहीं करना चाहिए, विशेष रूप से जब इस तरह का निष्कर्ष आचरण के अवलोकन पर आधारित है, को हल्के मे अस्वीकार नहीं किया जाना चाहिए । लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि केवल किसी भी मामले में एक परीक्षण न्यायाधीश के निष्कर्षों को उलट नहीं देगा, जहां तक कि विश्वसनीयता का सवाल, अगर ऐसा सवाल एक मेले पर निर्भर करता है अभिलेख पर मामलों पर विचार करना। जब यह दिखाई देता है। न्यायालय से अपील करें कि इस पर महत्वपूर्ण विचार विश्वसनीयता के सवाल को ध्यान में नहीं रखा गया है या विचारण न्यायाधीश द्वारा उचित रूप से तौला गया और ऐसे विचार गवाह स्पष्ट रूप से इंगित करते हैं कि विचारण न्यायाधीश द्वारा लिया गया दृष्टिकोण गलत है, अपील न्यायालय को पलटने में कोई संकोच नहीं होना चाहिए ऐसे प्रश्नों पर विचारण न्यायाधीश के निष्कर्ष।

जहाँ सवाल पूरी तरह से व्यवहार पर आधारित विश्वसनीयता का नहीं है, गवाहों ने न्यायालय में अवलोकन किया, लेकिन साबित प्राथमिक तथ्यों से एक तथ्य के निष्कर्ष का प्रश्न अपील न्यायालय विचारण न्यायाधीश के रूप में अच्छी स्थिति में है और निष्कर्षों को उलटने के लिए स्वतंत्र है यदि वह सोचता है कि विचारण न्यायाधीश द्वारा किया गया निष्कर्ष उचित नहीं है।

. टी. डी. गोपालन बनाम हिंदू धार्मिक आयुक्त और

इस न्यायालय ने कहाः (1972) 2 धारा. सी. सी. 329)

सी. सी पी. 333 , पैरा 9):

" 9. उच्च न्यायालय ने इसके बाद एक सारांश को पुनः प्रस्तुत करने के लिए आगे बढ़ाया। प्रतिवादियों द्वारा प्रस्तुत प्रत्येक गवाह का बयान। उन कारणों पर चर्चा करने का कोई प्रयास नहीं किया गया जो विद्वान जिला न्यायाधीश ने नहीं दिए थे। यहाँ और वहाँ एक सामान्य अवलोकन के अलावा उनके साक्ष्य को स्वीकार करना कि क्रूस में कुछ भी सुझाव नहीं दिया गया था। विचारण न्यायालय ने न करने के लिए ठोस और विस्तृत कारण दिए हैं किसी गवाह की गवाही को स्वीकार करते हुए अपीलीय न्यायालय को अपनी पूरी निष्पक्षता से उस गवाही को स्वीकार करने के बारे में एक विपरीत राय बनाने के लिए आगे बढ़ने से पहले उन कारणों से निपटना चाहिए जो विचारण न्यायालय ने खारिज कर दिया है। इसलिए हम यह जानने की स्थिति में नहीं हैं कि उच्च न्यायालय विद्वान जिला न्यायाधीश द्वारा प्रबल कारणों के साथ प्रस्तुत गवाहों के साक्ष्य पर भरोसा नहीं करने के लिए किन आधारों पर असहमत था।

5. मधुसूदन दास बनाम में एक अन्य निर्णय में। नारायणबाई 1983) 1 धारा. सी. सी. 35], इस न्यायालय ने कहाः (एससीसी पीपी। 39–40 , पैरा 8):

" 8. ..... इस स्तर पर, इस सामान्य सिद्धांत का उल्लेख करना सही होगा कि, विचारण न्यायालय के आदेश के खिलाफ अपील में, जब अपीलीय न्यायालय मौखिक साक्ष्य को चालू करने वाले मुद्दे पर विचार करती है, तो उसे यह ध्यान रखना चाहिए कि उसे वह लाभ नहीं मिल रहा है जो विचारण न्यायालय को गवाहों को अपने सामने रखने और जिस तरीके से उन्होंने अपनी गवाही दी, उसका पालन करने का अधिकार था। जब किसी मुद्दे पर मौखिक साक्ष्य का टकराव होता है और इसका संकल्प गवाहों की विश्वसनीयता पर निर्भर करता है, सामान्य नियम यह है कि अपीलीय न्यायालय को निष्कर्षों की अनुमति देनी चाहिए। जब किसी भी मुद्दे पर मौखिक साक्ष्यों में टकराव होता है और इसका समाधान गवाहों की विश्वसनीयता पर निर्भर करता है तो सामान्य नियम यह है कि अपीलीय न्यायालय को ट्रायल कोर्ट द्वारा दिए गए तथ्य के निष्कर्षों को तब तक प्रभावी रहने की अनुमति देनी

चाहिए जब तक कि स्पष्ट रूप से ऐसा प्रतीत न होता हो कि एक के साक्ष्य के बारे में कुछ विशेष विशेषता विचारण न्यायालय के नोटिस से बच गया है या इसके विस्थापन के लिए असंभवता का पर्याप्त संतुलन है... ... ...

राय जहाँ विश्वसनीयता निहित है। ..... सिद्धांत एक है अभ्यास का और एक खोज को दिए जाने वाले वजन को नियंत्रित करता है

विचारण न्यायालय द्वारा तथ्य। इसमें कोई संदेह नहीं है कि कानून का एक मामला यदि परीक्षण द्वारा साक्ष्य का मूल्यांकन न्यायालय एक भौतिक अनियमितता से ग्रस्त है या इस पर आधारित है अस्वीकार्य साक्ष्य या साक्ष्य के गलत पढ़ने पर या अनुमानों और अनुमानों पर अपीलीय न्यायालय है तथ्य के निष्कर्ष में हस्तक्षेप करने का अधिकार है।

(जोर दिया गया)

36. विचारण न्यायालय के निष्कर्ष को उलट देने हेतु तीन आवश्यकताएं आम तौर पर एक अपीलीय न्यायालय के समक्ष उपस्थित होनी चाहिएः

(i) यह विचारण न्यायालय द्वारा दिए गए कारणों पर अपने दिमाग को लागू करता है;

(ii) इसे गवाह को देखने और सुनने में फायदा नहीं है, और

(iii) यह विचारण न्यायालय से असहमत होने के लिए ठोस और विश्वसनीय कारणों को दर्ज करता है।

37. यदि हमारे निर्णय में उपरोक्त वर्णित स्धिांतों को ध्यान में रखा जाता है तो उच्च न्यायालय के निर्णय में उन आधारों की कमी है जो प्रथम अपीलीय न्यायालय को विचारणीय न्यायालय द्वारा अभिलिखित तथ्य के निष्कर्ष को उलटने की अनुमति दें। जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, उच्च न्यायालय इस तरह के निष्कर्ष का समर्थन के कारणों को दर्ज किए बिना एक 'वस्तुतः' निष्कर्ष पर पहुंच गया है। जब मूल अधिकारिता वाले न्यायालय मौखिक साक्ष्य पर विचार और गवाहों का अचारण देखने के बाद दर्ज किए गए निष्कर्षों पर विचार किया और अपना दिमाग भी लगाया। इन्हे विचारणीय न्यायालय द्वारा अभिलिखित कारणों और प्राप्त निष्कर्षों को देखना हौगा। इसके बाद, यह निश्चित रूप से अपीलीय न्यायालय के लिए खुला है कि अपने स्वयं के निष्कर्ष पर आए यदि वह यह पाते है कि जिस कारण से ट्रायल कोर्ट द्वारा निष्कर्ष पर पहुंचा गया था वह विधि के अनुरूप नहीं था। "

23. इस प्रकार, हमें यह मानने में कोई हिचकिचाहट नहीं है कि हालांकि प्रथम अपीलीय न्यायालय तथ्य और कानून का अंतिम न्यायालय है, इसे संहिता की धारा 96 के निपटान और दायरे के अनुरूप होना चाहिए।

परीक्षण न्यायालयः

24. परीक्षण न्यायालय संदेह का न्यायालय नहीं, बल्कि विवेक का न्यायालय है। इसे नैतिक तर्क को अपनाने के बजाय प्रासंगिक तत्थयों पर विचार करना होगा। भाई या बहन में से किसी एक को केवल अलग रखने से तब तक संदेह पैदा नहीं होगा जब तक कि यह एक निष्कर्ष बनाने वाली अन्य परिस्थितियों से घिरा न हो। एक ऐसे मामले में जब वसीयत के लाभार्थी की बहन के साथ एक वसीयतनामा होता है और उक्त दस्तावेज़ भाई द्वारा अनुप्रमाणित किया जाता है, तो किसी भी संदेह के लिए कोई जगह नहीं है जब दोनों ने कोई मुद्दा नहीं उठाया है।

तथ्य पर

25. अपीलार्थी ने भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 68 के साथ भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 63 के अधिदेश का विधिवत पालन किया है।। वा.सा.2 अपीलार्थी के भाई होने के नाते और दूसरी बहन, सुश्री कांता लक्ष्मी प्रदर्श पी.4 के निष्पादन के समय मौजूद थीं। उन्होंने कोई आपत्ति नहीं जताई है। दोनों अदालतों ने पाया कि प्रदर्श डी.1 एक जाली और मनगढ़ंत दस्तावेज है। कथित बंधक प्रतिवादी क्रं.1 के पक्ष में साबित नहीं हुआ है। अपीलीय न्यायालय ने, हमारे सुविचारित विचार में, अनावश्यक रूप से संदेह पैदा किया है जब कोई संदेह नहीं है। प्रतिवादीगण ने प्रदर्श पी.4 के निष्पादन के तथ्य से इनकार नहीं किया है। तथ्य यह है कि उन्होंने प्रदर्श डी.1 पर भरोसा किया, जिसने प्रदर्श पी.4 को वैध रूप से ध्यान में रखा, उच्च न्यायालय की ओर से किसी भी संदेह की कोई आवश्यकता नहीं है। वह भी, जब ट्रायल कोर्ट कोई नहीं मिला। इस तरह का संदेह, जैसा कि पहले कहा गया है, अपीलार्थी के किसी भी भाई–बहन से उत्पन्न नहीं हुआ, जो अन्यथा वाद संपत्ति में हिस्सेदारी के हकदार होंगे। उनका बहिष्कार उन प्रतिवादियों के लाभ के लिए सुनिश्चित नहीं होगा जो प्रदर्श डी1 के तहत पाठ और अपने लिखित बयान में किए गए कथन से बाध्य हैं।

26. उच्च न्यायालय ने भी अपीलार्थी की बहन सुश्री कांता लक्ष्मी की उपस्थिति का गलत अर्थ निकालने में त्रुटि की है। उसका उपस्थिति वास्तव में प्रदर्श पी.4 के सही को मजबूती प्रदान करती है। यह अपीलार्थी, और शायद वा.सा.2 और सुश्री कांता लक्ष्मी का विशिष्ट मामला है कि मृतक, सुश्री जेसी जयलक्ष्मी चाहती थीं कि संपत्ति उनके पक्ष में दी जाए। उनकी भागीदारी के साथ बाद का आचरण प्रदर्श पी.4 को बनाए रखने के लिए पर्याप्त होगा। जब प्रदर्श पी.4 के निष्पादन के आसपास कोई संदिग्ध परिस्थितियाँ नहीं होती हैं, तो हटाने की कोई आवश्यकता नहीं होती है।

27. दोनों न्यायालयों ने प्रदर्श डी.1 पर विश्वास न करने के लिए पर्याप्त तर्क दिये है। इसके विपरीत अभिवचनों के अभाव में, इसके बाद तैयार किए गए विवाघक पर, अपीलीय न्यायालय के लिए यह खुला नहीं है कि वह ऐसी कवायद शुरू करे जिसकी आवश्यकता नहीं है और जिसकी कानून के तहत अनुमति भी नहीं है। हम पहले ही मान चुके हैं कि उच्च न्यायालय ने विचारण न्यायालय द्वारा व्यक्त किए गए विचारों से भिन्न होने के कोई कारण नहीं दिया है।

28. प्रतिवादीगण की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा जिन निर्णयों पर भरोसा किया गया है, उनका उकेत मामले में कोई अनुप्रयोग नहीं है। यह कहना सही होगा कि संदिग्ध परिस्थितियाँ को होना एक तथ्य है। तथापि, न्यायालय का दृष्टिकोण कानून के विपरीत होने के कारण, हमें यह अभिनिर्धारित करने में कोई संकोच नहीं है कि अपीलीय न्यायालय के निर्णय और डिक्री में हस्तक्षेप करने की आवश्यकता है। जैसा कि कहा गया है, प्रदर्श डी.1 के बजाय प्रदर्श पी.4 का उचित निष्पादन स्वीकार किया जाता है। प्रदर्श पी.4 पर प्रतिवादी क्रं.1 द्वारा भी पूछताछ नहीं की जा सकती है, जो कोई और नहीं बल्कि अपीलार्थी का पूर्ववर्ती बहनोई है। प्रतिवादी क्रं.1 और 2 केवल प्रदर्श डी.1 पर भरोसा करते हैं जो दोनों न्यायालयों द्वारा उचित रूप से वास्तविक नहीं पाया गया है। हम महसूस करते हैं कि अपीलीय न्यायालय ने प्रासंगिक तत्थयों पर विचार नहीं किया है और तथ्यों या कानून पर आवश्यक नहीं होने पर अपने विचारों को प्रतिस्थापित किया है।

29. उच्च न्यायालय ने प्रदर्श डी.1 के जाली और मनगढ़ंत होने पर अविश्वास करने के लिए पर्याप्त तर्क देने के बाद इस बात को ध्यान में रखना चाहिए था कि प्रतिवादी क्रं. 1 का आचरण और दृष्टिकोण। प्रदर्श पी.4 पर सवाल उठाने के बजाय, वाद संपत्ति को प्रासंगिक तत्थ होने के कारण के साथ तलाक की डिक्री के अनुसरण में अपने और अपनी पत्नी के बीच संबंधों के मनगढ़ंत विच्छेद जैसे कारकों को ध्यान में रखकर उसपे विचार करना चाहिए था। यदि ऐसा किया जाता, तो शायद यह निष्कर्ष निकलता कि इस तरह की कवायद प्रतिवादीगण के हाथों उचित नहीं है, जिन्होंने न केवल प्रदर्श पी.4 को स्वीकार किया, बल्कि सिवाय तर्क के इस पर और काई सवाल भी नहीं उठाया कि इसे प्रदर्श डी1 द्वारा प्रतिस्थापित किया गया है।

30. उपरोक्त कारणों से, हमें यह मानने में कोई हिचकिचाहट नहीं है कि अपीलीय न्यायालय द्वारा 2004 का आर. एफ. ए. सं. 692 में दिया गया निर्णय और डिक्री, जिसे 2007 के आर. पी. No.279 में पुष्टि की गई है, को अलग रखा जाना आवश्यक है। तदनुसार, उन्हें खारिज कर दिया जाता है और परिणामस्वरूप 1992 के ओ.एस.सं.51 में विचारण न्यायालय के निर्णय और डिक्री को बहाल करके अपीलों को अनुमति दी जाती है। कोई लागत नहीं।

दिव्या पांडे

अपीलों की अनुमति दी गई।

हिन्दी रुपांतरणकर्ता

(शोआ मंसुर)
प्रथम व्यवहार न्यायाधीश वर्ग–दो के
द्वितीय अति. न्यायाधीश, बिलासपुर, छ.ग.